अध्याय-15

पुरुषोत्तमयोग-नामक 15वाँ अ0।।

[1-6 संसारवृक्ष का कथन और भगवत्प्राप्ति का उपाय]

श्रीभगवानुवाचः-ऊर्ध्वमूलं अधःशाखं अश्वत्थं प्राहुः अव्ययं। छन्दांसि यस्य पर्णानि यः तं वेद स वेदवित्।। 15/1

ऊर्ध्वमूलं	ऊपर {सिद्धार्थ-जीसिस जैसी आधारमूर्त} जड़ों वाले, {दाईं-बाईं ओर विधर्मी-विदेशी धर्मों की}
अधःशाखं छन्दांसि	अधोमुखी शाखाओं वाले, {'तुण्डे-2 मतिर्भिन्ना' संकल्पों के} छन्दों रूपी {अलग-2 प्रकार के},
यस्य पर्णानि	जिसके {सृष्टि-वृक्षीय 7 अरब चेतन} पत्ते हैं, {ऐसे मनन-चिंतनशील आदिमानव आदम के मनरूपी}
अश्वत्थं	{चंचल बने पीपल की, सच्चीगीता ज्ञान-योग से स्थिर बने} अश्वत्थ {वटवृक्ष/बनियन ट्री} को
अव्ययं प्राहुः यः तं	अविनाशी कहा है। जो उस {बंगाली सृष्टिवृक्ष के आदि-मध्य-अंत} को {भली-भाँति गहराई से}
वेद स वेदवित्	जानता है, वह {साक्षात् चौमुखी ब्रह्मामुख से निकले} वेदों का {पुरुषोत्तम संगमयुगी ब्राह्मण ही} ज्ञाता है।

अधश्च ऊर्ध्वं प्रसृताः तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः। अधश्च मूलानि अनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। 15/2

तस्य	{इस अधोमुखी सुख-दुःख के संसार में} उस {मानवीय अश्वत्थ सृष्टिवृक्ष} की {सत्व-रज-तम, इन तीन प्रकार के}
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः	गुणों से प्रकृष्टतया बढ़ने वाली {द्वापर से विकारी धर्मावलम्बियों के} प्रकृष्ट अंकुरों वाली,
शाखा अधश्च	{देशी-विदेशी} शाखाएँ नीचे {अधोलोकीय नरक में} तथा {देवी-देवता सत्य सनातन धर्म के मूल तना वाली}
ऊर्ध्वं प्रसृताः च	ऊपर {राम-कृष्ण के स्वर्गलोक में मर्ज रूप से ही} फैली हुई हैं और {मंदिरों में पूजित बच्चा बुद्धि कृष्ण की}
कर्मानुबंधीनि	{मिक्स बनी पड़ी गीतामत या मानवमत से प्रभावित स्वर्ग में श्रेष्ठ & नर्क में भ्रष्ट बने} कर्मों को बाँधने वाली,
मूलानि	{पु. संगम में भी शूटिंगकालीन सिद्धार्थ-जीसिस जैसे-आधारमूर्त ब्रह्मावत्सों की बाईप्लाट} जड़ें

अधः मनुष्यलोके	नीचे {की दाई-बाई शाखाओं में चीरफाड़कर्ता हिंसक दैत्यों के द्वैतवादी द्वापुर-कलियुगी नारकीय} मनुष्यलोक में
अनुसंततानि	टोटल फैली हुई हैं। {इसीलिए कलियुगांत में ही सभी विधर्मियों के होने से गीता 18-66 में बोला- "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"सर्व धर्म त्याग मुझ एक की शरण में आ जा।}

न रूपं अस्य इह तथा उपलभ्यते न अन्तः न च आदिः न च सम्प्रतिष्ठा। अश्वत्थं एनं सुविरूढमूलं असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।। 15/3

अस्य तथा रूपं इह उपलभ्यते न	इस {अनादि} वृक्ष का वैसा {परं/ब्रह्मलोकीय} रूप यहाँ {पृथ्वी पर} उपलब्ध नहीं है
च न आदिः न सम्प्रतिष्ठा च नांतः	और न {इस वट-बीज आदिदेव का} आदि, न मध्य और न अन्त {ही यथार्थ में देखा जाता} है।
सुविरूढमूलमेनं अश्वत्थं	खूब पक्की {त्रिदेवियों की} जड़ों वाले इस {कामासक्त चंचल} मन रूपी अश्व की स्थिरता {हेतु}
दृढेन असंगशस्त्रेण छित्त्वा	{पु. संगम में} दृढ़ता {की गदा द्वारा अथवा} अनासक्ति के शस्त्र {सुदर्शनचक्र} द्वारा काटकर,

ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं यस्मिन् गताः न निवर्तन्ति भूयः। तं एव च आद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। 15/4

ततः तत् पदं	उस {परम कल्याणकारी पुरुषोत्तम संगमयुग} से उस {अतीन्द्रिय सुखदाई, कलातीत} परंपद-{विष्णुलोक} को
परिमार्गितव्यं यस्मिन्गताः	{मूसलों रूपी मिसाइलयुग में अभी ही} खोजना चाहिए, जिस {वैकुण्ठ} में गए हुए
भूयः न निवर्तन्ति	{9 कुरियों में पहले वाले सूर्यवंशी ब्राह्मण} पुनः {यहाँ नर-निर्मित नर+क में} नहीं लौटते।
च तं एव आद्यं पुरुषं प्रपद्ये	निश्चय ही उसी आदि {देव/अर्धनारीश्वर} परमपुरुष {हीरो पार्टधारी} की शरण लेनी चाहिए,
यतः पुराणी प्रवृत्तिः प्रसृता	जिससे पुरानी {सत्य सनातन प्रवृत्तिमार्गी देवी-देवता धर्म की} प्रक्रिया प्रसारित हुई है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः। द्वन्द्वैः विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैः गच्छन्ति अमूढाः पदं अव्ययं तत्।। 15/5

निर्मानमोहाः जितसंगदोषाः	मान और मोहरहित, {आत्माभिमान से देहाभिमानियों के} संगदोष को जीतने वाले,

अध्यात्मनित्याः	{भौतिकवाद को त्यागने वाले परमात्मुपासी जन} नित्य आत्मज्ञान की गहराई में लगे हुए ,
विनिवृत्तकामाः सुखदुःखसंज्ञैः	{सांसारिक} कामनाओं से विशेषतः निवृत्त {और} सुख-दुःख, {सर्दीगर्मी,मानापमानादि} नाम के
द्वन्द्वैः विमुक्ताः अमूढाः	{देह जनित} द्वन्द्वों से विशेष मुक्त, मोहरहित ज्ञानीजन, {रूहानियत भरे, सदानन्दमग्न, शांत}
तदव्ययं पदं गच्छन्ति	{माहौल के} उस अविनाशी परमपद {वाले अतीन्द्रिय सुख के विष्णुपदी परंब्रह्मलोक} में जाते हैं।

न तत् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परमं मम।। 15/6

तत् न सूर्यः न शशांकः न पावकः	उस {परंब्रह्म लोक} को न सूर्य, न चन्द्र {और} न {पंचमहाभूतों के बीच सदा दैदीप्यमान} अग्नि
भासयते यत् गत्वा न निवर्तन्ते	भासित होती है, जहाँ {वैकुण्ठ में} जाकर {नरक में 2500 वर्ष तक} नहीं लौटते,
तत् मम परमं धाम	वह {परंब्रह्मलोक} मेरा {परा प्रकृति की योग ऊर्जा-निर्मित परमप्रकाशित} परमधाम है। {मैं सर्वव्यापी नहीं।}

[7-11 जीवात्मा का विषय]

मम एव अंशः जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनःषष्ठानि इन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। 15/7

जीवलोके जीवभूतः मम एव	{नं. वार} प्राणियों वाली सृष्टि में {कल्पपूर्व के पुरुषार्थ निर्मित योगीश्वर का} मेरा ही
सनातनः अंशः प्रकृतिस्थानि	सनातन {बुद्धिरूप शिवनेत्री} अंश, अपरा प्रकृति में स्थित {जड़त्वमयी बुद्धि को},
मनःषष्ठानि इन्द्रियाणि कर्षति	मन सहित छः ज्ञानेन्द्रियों को {भी, जगत्पिता महादेव द्वारा योगबल से} खींचता है।

शरीरं यत् अवाप्नोति यत् च अपि उत्क्रामति ईश्वरः। गृहीत्वा एतानि संयाति वायुः गन्धान् इव आशयात्।। 15/8

यत् ईश्वरः	जब {पु. संगम में परंब्रह्मा के बुद्धिरूपी पेट में एकत्र अखंड योगऊर्जा का अंश} आत्मा/ईश्वर {या प्राणवायु}
उत्क्रामति च यत् शरीरं अवाप्नोति अपि	ऊपर निकलता है और जब {दूसरी} देह {के निर्जीव गर्भ} को भी धारण करता है,

इव वायुः आशयात् गन्धान्	{तब} जैसे {अदर्शनीय} वायु फूलों से सुगन्धियों को {दूर ले जाती है, वैसे ही प्राणवायु}
एतानि गृहीत्वा संयाति	इन {भिन्न योनिगत प्राणियों की अपरा प्रकृतिगत दैहिक 23• तत्वों} को लेकर जाता है। (•गीता 13/5)

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणं एव च। अधिष्ठाय मनश्च अयं विषयान् उपसेवते।। 15/9

अयं श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं रसनं च	यह {योगूर्जारूप ज्ञान सूर्य की आत्मकिरण परा प्रकृति} कान, आँख, त्वचा, जिह्वा और
घ्राणं च एव मनः अधिष्ठाय	नासिका को, वैसे ही {छठे चंचल} मन {बुद्धि युक्त अव्यक्त त्रिनेत्री} का आधार लेकर,
विषयान् उपसेवते	{पंचमहाभूत-निर्मित जड़ देहरूप यंत्र/कार से} विषय-भोगों का {ज्ञान+कर्मेन्द्रियों द्वारा} सेवन करती है।

उत्क्रामन्तं स्थितं वा अपि भुञ्जानं वा गुणान्वितं। विमूढा न अनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।। 15/10

उत्क्रामन्तं वा स्थितं अपि वा भुंजानं	{देह} छोड़ते या धारण करते भी अथवा {विषय-भोग} भोगते हुए {विद्युत करेंट-जैसी}
गुणान्वितं ज्ञानचक्षुषः पश्यन्ति	त्रिगुणयुक्त आत्मा को {एडवांस गीता} ज्ञान नेत्र वाले {परमब्रह्मावत्स ही} देखते हैं,
विमूढा न अनुपश्यन्ति	{दिखावटी टीकाकर्ता} महामूर्ख नहीं देख पाते। {तो द्वापरांत से सर्वव्यापी मान लेते हैं।}

{निराकार अभोक्ता सदा शिवज्योति पु. संगमयुग में सृष्टि के बीज आदिमानव में ही एकव्यापी है, उस की ही सुननी चाहिए।}

यतन्तो योगिनश्च एनं पश्यन्ति आत्मनि अवस्थितं। यतन्तः अपि अकृतात्मानः न एनं पश्यन्ति अचेतसः।। 15/11

यतन्तः योगिनः एनं	यत्नवान योगी इस {भरीपूरी भृकुटि में योगूर्जा से परिपूर्ण •आत्म-किरणज्योति बिंदु} को
आत्मन्यवस्थितं पश्यन्ति	अपने {प्रकृतिकृत देह के •भ्रूमध्य} में {सदा मन बुद्धि से} भली-भाँति स्थित हुआ देखते हैं;
चाकृतात्मानोऽचेतसः यतन्तः	किंतु अपनी इन्द्रियों को वश में न करने वाले {जन्म-2 के हिंसक भोगी} बुद्धू लोग यत्न करते
अपि एनं न पश्यन्ति	भी इस {आत्मा} को {एकाग्र मन से} नहीं देख पाते। {क्योंकि अनास्थावान/नास्तिक बन पड़े हैं।}

•{'अणोरणीयांसमनुस्मेरद्यः' (गीता 8-9) •'भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य' (गी.8-10) 'चक्षुश्चैवान्तरे •भ्रुवोः' (5-27)}

[12-15 प्रभावसहित परमेश्वर के स्वरूप का विषय]

यत् आदित्यगतं तेजो जगत् भासयते अखिलं। यत् चन्द्रमसि यत् च अग्नौ तत् तेजः विद्धि मामकं।। 15/12

यदादित्यगतं तेजः अखिलं	जो {जड़ प्रकाश वाले सूर्य जैसे 1 मात्र चेतन} ज्ञान सूर्य शिवबाबा में स्थित {योग-ऊर्जा का} तेज सम्पूर्ण
जगद्भास्यते चन्द्रमसि चाग्नौ	जगत् को प्रकाशित करता है, {वैसे ही} कृष्णचन्द्र {देव} & अग्नि {देव} में {आभामय}
यत्तेजः तन्मामकं विद्धि	जो तेज है, वह मेरा {प्रतिरूप महादेव को ही} जान। {सभी आत्माएँ एक साकार विवस्वत सूर्य नहीं हैं।}

{सृष्टि में ऑलराउण्ड हीरो पार्टधारी जगत्पिता विवस्वत सूर्य का नं. वार योगबल रूपी तेज या ऊर्जा प्राणीमात्र में व्यापक है। जैसे बिजली-करेंट यंत्रों में जाता है वैसे ही पु. संगम से ही यह तेज प्राणियों में नं. वार पुरुषार्थ अनुसार विभाजित है।}

गां आविश्य च भूतानि धारयामि अहं ओजसा। पुष्णामि च ओषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।। 15/13

चाहं गां आविश्य भूतानि	और मैं {अर्जुन की देहरूपा} पृथ्वी-माता{अपरा-प्रकृति} में प्रवेश करके {पु. संगम में} प्राणियों को
ओजसा धारयामि च रसात्मकः	{जगत्पिता की} योग-ऊर्जा से पालता हूँ और {रामबाप+परब्रह्मा की} ज्ञानरसयुक्त {एडवांस गीताज्ञान से}
सोमः भूत्वा सर्वाः औषधीः पुष्णामि	सोमरस होकर {मन-बुद्धि सहित आत्मा की} सब {ज्ञानघोट} औषधियाँ पुष्ट करता हूँ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहं आश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचामि अन्नं चतुर्विधं।। 15/14

अहं वैश्वानरः भूत्वा प्राणिनां	मैं विश्व की नररूप {ज्वलनशील योगीश्वर की योगाग्निरूप} जठराग्नि होकर प्राणियों के
देहं आश्रितः चतुर्विधं अन्नं	देहाश्रित हुआ {भक्ष्य-भोज्य-चव्य-चोष्य} 4 प्रकार के {आत्म-प्यार की योगिक} खुराक को
प्राणापानसमायुक्तः पचामि	{सत्संकल्पी} प्राण और {शिवोऽहं या परंब्रह्मास्मि रूप} अपान वायु से मिलाकर पचाता हूँ।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिः ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यो वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहं।। 15/15

अहं सर्वस्य हृदि सन्निविष्टः	{कल्पांत में} मैं सबके दिल में {नं. वार स्मृति रूप से आदि, म. या अंत में} निवास करता हूँ
च मत्तः स्मृतिः च ज्ञानं च	और मेरे से परमात्म- स्मृति और अगाध ज्ञान-रत्नों {की उत्पत्ति} तथा {उनका}
अपोहनं अहमेव सर्वैः वेदैः वेद्यः	लोप होता है। मैं ही {संगठित 4 ब्रह्मामुख-निसृत} सब वेदों द्वारा जानने योग्य हूँ,
वेदान्तकृत् च वेदवित् एवाहं	{ज्ञान-अंतकर्ता} वेदान्ती और {द्वापर से} वेद-ज्ञाता भी मैं ही {वेदव्यास/शिवबाबा} हूँ।

[16-20 क्षर, अक्षर, पुरुषोत्तम का विषय]

द्वौ इमौ पुरुषौ लोके क्षरश्च अक्षरः एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थः अक्षरः उच्यते।। 15/16

लोके इमौ द्वौ एव पुरुषौ	संसार में ये {सभी प्राणी भोक्ता & एक अभोक्ता, ये} दो• ही प्रकार की {'द्वा• सुपर्णा'...} आत्माएँ हैं-
अक्षरः च	अक्षर {शिव+समान अमोघवीर्य शंकर जो धीमा पतनशील भोगी} और {फिर भी अविनाशी}
सर्वाणि भूतानि क्षरः	{पार्टधारी महादेव-सिवा} सभी {क्षतवीर्य/पतनशील} प्राणी विनाशी हैं, {आज हैं, कल नहीं}
च कूटस्थः	और {परम ब्रह्मलोक वासी, ऊँची मनसा स्थिति से काशी-कैलाशी एवरेस्ट} शिखर पर स्थित {ब्राह्मण चोटी}
अक्षरः उच्यते	{रूप अविनाशी,} /अमोघवीर्य {सदाशिव+दैहिक लिंगरूप=सोमनाथ मंदिर का शिवबाबा} कहा जाता है;

उत्तमः पुरुषः तु अन्यः परमात्मा इति उदाहृतः। यो लोकत्रयं आविश्य बिभर्ति अव्ययः ईश्वरः।। 15/17

त्वन्यः उत्तमः पुरुषः	किंतु इन दोनों {क्षर-अक्षर} में {प्राणीमात्र क्षर & सदाशिव ज्योति अक्षर} से भिन्न सर्वोत्तम आत्मा
परमात्मेत्युदाहृतः	'परम+आत्मा' ऐसे {तुरीया भोगी हीरो} कहा जाता है, {सभी आत्मा सो परमात्मा नहीं हैं।}
यः अव्ययः ईश्वरः	जो {अक्षर} अमोघवीर्य श्रेष्ठ शासक {मास्टर त्रिलोकीनाथ, सदा शिवज्योति समान शिव+बाबा} है।
लोकत्रयं आविश्य बिभर्ति	{सुख, दुःख और शांतिधाम} तीनों लोकों• को अधिकार में लेकर विशेष पोषण करता है।

•मैं (शिव निराकार ज्योतिबिंदु) तो सिर्फ (अण्डे मिसल सामान्य आत्माओं के) ब्रह्माण्ड का मालिक हूँ (गी.15-06) तुम (एवरेस्ट-जैसी चोटी के ब्राह्मण) तो {सुखदुख-शांतिधाम• तीनों के} त्रिलोकीनाथ बनते हो। (मु.ता.12/5/70 पृ.1 आदि)

यस्मात् क्षरं अतीतः अहं अक्षरात् अपि च उत्तमः। अतः अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। 15/18

यस्मात् अक्षरात् अपि अतीतः च	जिस अक्षर {आदि नारायण/महादेव} से भी {आत्मस्थिति में सदाकाल} अतीत और
उत्तमः अहं अस्मि च	{पुरुष रूप आत्माओं में} उत्तम {सदाशिवज्योति पुरुषोत्तम} आत्मा मैं हूँ, तथापि {मेरी याद से वह मेरे
अतः लोके वेदे क्षरं पुरुषोत्तमः प्रथितः	समान बना है;} इसलिए लोक & वेद में क्षर• को {भी} पुरुषोत्तम कहा है।

{•'आदम को खुदा मत कहो, आदम खुद+आ नहीं; लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं।'} ये मुसलमानी फिकरा भी है।

यो मां एवं असम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमं। स सर्ववित् भजति मां सर्वभावेन भारत।। 15/19

भारत योऽसम्मूढः	हे {ज्ञान की रोशनी में सदारत} भारत! जो पूरा मूर्ख नहीं, {थोड़ा भी ज्ञानी है, वह व्यक्ति}
मां एवं पुरुषोत्तमं	मुझ {सदाशिव ज्योति} को, {ऊपर जैसा कहा,} ऐसे ही {पुरु+ष रूप} आत्माओं में सर्वोत्तम
जानाति स सर्ववित्	समझता है, वह {निकट भविष्य में} सब-कुछ जानने वाला {मास्टर त्रिकालदर्शी}
मां सर्वभावेन भजति	मुझे {ही} सर्व {संबंधों के अव्यभिचारी/'मामेकम्'} भाव से {पु. संगमयुग में भी} याद करता है।

इति गुह्यतमं शास्त्रं इदं उक्तं मया अनघ। एतत् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।। 15/20

अनघ इति इदं गुह्यतमं	हे निष्पाप! {या कलंकीधर?} इस प्रकार यह {PBks में} 'गुह्यात् गुह्यतरं' {एडवांस ज्ञान का}
शास्त्रं मया उक्तं भारत	{सर्वमान्य} गीताशास्त्र मैंने {केवल तुम्हें} बताया है। हे {ज्ञान की रोशनी में सदारत} भारत!
एतत् बुद्ध्वा बुद्धिमान्	इसे {गहराई से} जानकर {मनुष्य शिवसमान त्रिनेत्री महादेव जैसा} समझदार/बुद्धिमान
च कृतकृत्यः स्यात्	और {पु. संगमयुग में ही नं.वार श्रेष्ठ ज्ञान पाने वाला} सफल मनोरथ बन जाता है।